International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 18-05-2021, Accepted: 02-05-2021, Published: 18-06-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 101-106

हिंदी कविता एवं रामधारी सिंह "दिनकर"

Dr. Ratna Banerjee
Mukularanyam English School Sigra Varanasi, A.P.S University, Rewa, Madhya Pradesh, India

सारांश

दिनकर के काव्य के उतार-चढ़ाव के प्रत्येक चरण को उनके जीवन के विकास क्रम के साथ जोड़ा जा सकता है। दिनकर की कविता का विकास आदि से अंत तक द्वंदो से जूझने की कथा है -द्वंद जो प्रबुद्ध कवि को चिंतन और भावना के क्षेत्रों में प्रत्येक स्वर पर घेरते हैं, विकास करते हैं एवं उसे प्रगति के पथ पर ले जाते हैं। दिनकर जी ने उत्तम प्रतीकों का चयन करके अपूर्वचयी बुद्धि का परिचय दिया है। छायावाद के वायवीय गगन से उन्होंने धरती पर ना केवल स्वयं आने का वल्कि कविता कामिनी को भी खींच लाने का जो प्रण किया था, उसकी पूर्ति उर्वशी की रचना से हुई है। परंपरागत और प्रतीकों का उपभोग, उन्होंने एक नई दिशा में किया है ।परंपरा एवं प्रकृति का यह गठबंधन हिंदी काव्य के लिए निश्चय ही शुभ हैं।

मूलशब्द: रितिकाल' छायावाद का पूर्वाभास प्राचीन धाराओं का परिपाक, छायावादोत्तर काल: विशेषताएं एवं आत्मानुभूति, दिनकर: काव्यगत विशेषताएं|

प्रस्तावना

दिनकर जी का प्रिय विषय इतिहास था। इसी में योग्यता सहित वे पटना विश्वविद्यालय से बीए ऑनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण किए थे। कविता उनकी रूचि थी। वह स्कूल जीवन से कविता लिखते थे। अतः जब वे साहित्य जीवन में ख्यातिमान भी हुए तब भी वही ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रखर रहती थी। उनकी कृति "संस्कृति के चार अध्याय" हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों में बहु प्रचलित है ही, साथ ही इतिहास संस्कृत आदि के विद्यार्थी भी इसी ग्रंथ के आधार पर लेखक से परिचित हैं। दिनकरजी ने प्राक्कथन में लिखा है कि यदि वे चाहते तो इसे इतिहास का ग्रंथ बता सकते पर उनकी इच्छा से इसे साहित्य ग्रंथ ही रहने देना चाहते थे।

1.बिहार और बंगाल की भाषा यद्यपि हिंदी और बांग्ला है इतने निकट है कि किंचित ध्यान देने से वार्तालाप के समय दो व्यक्ति अपनी अपनी भाषा बोलते हुए भी एक दूसरे के आशय को भलीभांति समझ सकते हैं।

2. यह विवाद लंबे समय तक चला कि कविवर विद्यापति बंगाल के थे अथवा बिहार के? इसका कारण चाहे विद्वान जो भी सिद्ध करें पर मैं भाषाओं को एक प्रधान कारण मानती हूं। वहां बंगाली परिवार के लोग किसी कार्य के लिए बंगला में बातचीत करके अपने नौकर चाकरों को जो बिहारी होते हैं, समझाने का प्रयास करते हैं। पर वह उनके कथन के पहले कहते है, "मुझे यह काम ऐसे करना है, यही ना आप कहना चाहते हैं।" यह तो दैनिक एवं मासिक भृत्यों का हाल है, फिर पढ़े-लिखे लोगों का कहना ही क्या उनके लिए कोई समस्या ही नहीं।

जी रबीन्द्रनाथ थ ठाकुर से तथा समसामयिक अन्य बंगाली साहित्यिकों से काफी प्रभावित थे,

इस समय मैं उन्हीं के लेखों से उदाहरण प्रस्तुत करके हिंदी पर बंगला का प्रभाव को ऐतिहासिक क्रम से प्रस्तुत करना चाहूंगी। वे लिखते हैं:-

"ऐतिहासिक क्रम से रीति काल से लेकर प्रयोगवाद तक की प्रमुख वृत्तियां का विवेचन किया गया है।" दिनकर काव्य की भूमिका (दो शब्द)।" इसमें तो केवल उन्हीं निबंधों का संग्रह है, जो छायावाद की कुहेलिका से निकल कर प्रसन्न आलोक के देश की ओर बढ़ने वाली हिंदी कविता को लक्ष्य करके लिखे गए हैं। मेरे जानते वर्तमान कविता की यही धारा प्रमुख है और इसी का आश्रय लेकर हिंदी- कविता अपना विकास कर रही है। मगर, इसके सिवा भी इसके आसपास ही खड़े या बहते हुए छोटे बड़े अनेक प्रवाह है, जो साहित्य में अपना महत्व रखते हैं।" दिनकर, मिट्टी की ओर निवेदन।

"रीतिकाल": छायावाद का पूर्वाभास

दिनकर जी ने 'काव्य की भूमिका' नामक पुस्तिका में सर्वप्रथम रीतिकाल का नया मूल्यांकन नामक निबंध को प्रस्तुत किया है। यद्यपि इसमें रीतिकाल को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, जिससे हिंदी कविता की धारा को आगे बढ़ाने में इसमें किस प्रकार का सहयोग दिया, यह विवेचनीय हैं। आचार्यों के कदम जब ध्वनि की भूमि पर आए,कविता की असली आत्मा का पता उन्हें चल गया। इस प्रकार कविता के संबंध में आनंद वर्धन को जो सूक्ष्म ज्ञान नवी शताब्दी में प्राप्त हुई, उससे अधिक बारीकी पर दुनिया आज भी नहीं पहुंची है। शायद ध्वनि से आगे बारीक तत्व कविता में और कोई है ही नहीं।..... असली वस्तु शब्दों के अर्थ नहीं संकेत हैं और संकेत तो दूर तक का दिया करते हैं।

रीतिकाल का वर्णन करते हुए लेखक प्राचीन एवं मध्यकालीन प्रसंगों का उल्लेख करना नहीं भूलते इस विषय की पारदर्शिता छलक ने लगती है जैसा वे कहते हैं

रीतिकाल का दोष उनकी श्रृंगारिकता नहीं, यही निर्जीवता और नकलीपन है। विद्यापति और चंडीदास कम श्रृंगारिक नहीं है, किंतु उनकी श्रृंगारिकता के पीछे उनका प्रेम उपस्थित है, वह वासना उपस्थित है, जो पुरुष में नारी के लिए और नारी में पुरुष के लिए विद्यमान रहती है। इस वासना की अभिव्यक्ति की सच्चाई और सीधा पन विद्यापति के श्रृंगार को स्वाभाविक बनाए हुए हैं:-

ततहि वालों दुहुं लोचन रे,
जतए गेलि वर नारि।
आसा लुबुध न तेजई थे,
कृपनक पाछु भिखारी।

यह श्रृंगार की कविता है और उसकी महिमा का कारण ही यह है कि यहां कवि ने अपनी वासना को छिपाने की चेष्टा नहीं की है। किंतु रीति काल में ऐसी स्वाभाविकता नहीं मिलती। वहां राधा-कृष्ण अथवा आश्रयदाता राजा की आड़ ली जाती है।

सूरदास के बिरहिणियां, प्रकृति को अपना शत्रु समझती है-

बिनु गोपाल वैरिन भई कुंजे।
जो वे लता लगत अति शीतल
अब भई विषम अनल की पुंजे।

महा कवियों ने नीति- प्रचार अथवा विरहोद्दीपन के लिए प्रकृति का जो उपयोग किया है, उससे उनकी उक्ति सबल हुई ; किंतु इस पद्धति से चित्रण वास्तव में मनुष्य का होता है, प्रकृति का अपना रूप उससे खुलकर प्रकट नहीं होता। और रीति के चलन के पूर्व संस्कृत कवियों की भी यह दृष्टि नहीं थी। बाल्मीकि और कालिदास प्रकृति के सौंदर्य को अपने- आप में पूर्ण मानते थे, और इसलिए उनके प्रकृति वर्णन में केवल प्रकृति ही , जो सामने आती है, उसके साथ नायिका का ताप

या काम ज्वर अथवा संतों के उपदेश नहीं आते हैं। क्योंकि यह प्रकृति केवल प्रकृति है इसलिए उसका प्रभाव भी सहज ही मनोरम होता है। रीतिकाल चाहे निर्जीव सौंदर्य का काल रहा हो, किंतु वह हिंदी के आधुनिक काल की पार्श्वभूमि में पड़ता ं और उनमें नवीनता के बीज जहां-तहां अवश्य मिलते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने जो यह बात कही है कि कुछ कवियों ने फारसी कविता का प्रभाव ग्रहण किया था, वह प्रभाव बोधा में बहुत स्पष्ट है। उर्दू और फारसी में यह भाव बार-बार आया है कि प्रेमी अपनी पीड़ा किस से कहें यहां सुनने वाला ही कौन है। छायावाद में भी यह चीज कुछ तो सीधे उर्दू और कुछ घनानंद और बोधा के मार्फत पहुंची होगी। जैसे:-

जबते बिछुरे कवि बोधा हितु, तबते उर दाह थिरातो द्रौऔ नहीं। हम कौन सो पीर कहे नहीं।

रीतिकाल में अगर घनानंद को लेकर एक अलग परिवार की कल्पना की जाए, तो उसके सबसे विश्वासी सदस्य बोधा होंगे तथा इस परिवार में आलम, ठाकुर, रखना और मुबारक को भी नजदीक की जगह मिल जाएगी। बोधा घनानंद के ही गुटका संस्करण से लगते हैं।

कितने आश्चर्य की बात है कि जब रीतिकाल के पचासों कवि भविष्य की ओर से आंख मूंदकर अपनी प्रयोगशाला में काम करते-करते पीछे छूट गए, तब भविष्य की राह केवल धनानंद को दिखाई पड़ी और केशव, मतिराम,देव और बिहारी तथा पद्माकर अपनी सीमा ही में खत्म हो गए तब अतीत के जुलूस को भविष्य तक पहुंचाने की राह घनानंद ने बनाई और वे ही वह सेतु हुए, जिस पर चढ़कर पुरानी हिंदी- कविता ने नए युग में प्रवेश किया।

क्या यह विचारणीय प्रश्न नहीं है, कि नवीन हिंदी कविता का प्रथम कौन माना जाए?भारतेंदु या घनानंद?भारतेंदु की पंक्तियों में भी छायावादी शैली का आभास उतरा है, किंतु छायावाद से अधिक वे प्रगतिवाद के उन्नायक कहते हैं क्योंकि नवीनता की दिशा में उनका खास जोर कविता के सामाजिक पक्ष पर था पिंटू द्विवेदी युग की नीरसता के विरुद्ध कल्पना और सपनों की रंगीन खुले लिखा लिए जो नई काव्य शैली हिंदी में आई उसके अग्रदूत घनानंद भी थे घनानंद की कविता में हमें प्रगति मती हिंदी कविता की पदचाप सुनाई पड़ती है। उनका एक पाव रीति लोक में है जैसे भारतेंदु का भी किंतु दूसरा बिल्कुल छायावाद के पास पहुंचता है रीतिकाल के पांडित्य के ऊपर उनकी भावा खुलता नीचे पड़ गई थी घनानंद में हम भावाकुल का स्थान पांडित्य से बहुत ऊपर पाते हैं। घनानंद खुद भी उस भेद को देख रहे थे जो उनके तथा उनके समकालीन बंधुओं के बीच विद्वान था।

घनानंद के पास शब्दाडांबर, नहीं क्लिष्ट कल्पना नहीं, पांडित्य और आचार्य नहीं, जो है, वह केवल प्रेमी की अनुभूति है। उन्होंने सौंदर्य देखा था, और प्रेम किया था। अंत में बिरहा कि दुस्हय वेदना भी होगी थी। इन तीनों की अनुभूति उनकी कविता में विद्यमान हैं। उन्होंने जिस रूप का वर्णन किया है वह नशिक वाला बड़ा हुआ निर्जीव रूप नहीं है वह लावण्य है जो अंगना में अवयवों के सौंदर्य से अलग विभाजित होता है।

प्राचीन धाराओं का परिपाक

कभी-कभी यह सोचने पर कि यदि भारत में यूरोप का आगमन ना हुआ होता अथवा यदि स्वामी दयानंद उस समय ना आए होते जब उनका आगमन , तो रीतिकाल के बाद हिंदी कविता किस ओर जाती, दिनकर जी को ऐसा लगता है कि वह या तो उधर को जाती जिस ओर जाने का संकेत उन्हें घनानंद ने दिया था, अथवा उस ओर जाती जिधर भक्त भारतेंदु ले जा रहे थे। और सच पूछिए तो भक्त भारतेंदु और प्रेमी घनानंद यह एक ही दिशा की ओर इंगित करते हैं, जो दिशा

विचारों को नहीं, भाव की दिशा है। जो दिशा प्रचार नहीं, मात्र आनंद की दिशा है।

देशभक्त भारतेंदु की कविता में जो विचार उतरे हैं,वे भारत यूरोप संघर्षों के परिणाम है, यह इस नवीन प्रेरणा से उद्भूत विचार हैं कि जब देश अथवा मनुष्यता पर संकट आया हो, तब कवि भी मात्र आनंद सृजन को छोड़कर समाजोपयोगी ध्येयों की प्राप्ति में लग जाना चाहिए। शुद्ध कला वादियों की भाषा में कहना चाहे तो कह सकते हैं कि रीतिकाल के बाद की हिंदी-कविता कला की पराजय और जीवन की जय की कविता थी।

मिलाजुला कर यह कहना अधिक युक्ति युक्त लगता है कि ने आंदोलन की तैयारी हिंदी कविता के भीतर आपसे आप होती आ रही थी तथा प्रसाद जी और माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं तक वह हिंदी की पूर्ववत धारा के समीप थी। जब निराला और पंत आए उनके साथ कुछ रबीन्द प्रभाव भी हिंदी कविता में सम्मिलित हो गया।

छायावादी पर लिखते हुए पंडित रामचंद्र शुक्ल ने एक जगह कहा है कि हिंदी- कविता का स्वच्छंद विकास स्वत: होता आ रहा था, जिसकी रेखाएं मैथिलीशरण गुप्त, रमाने त्रिपाठी जगमोहन सिंह आदि की रचनाओं में मिलेगी। किंतु जब तक वह विकास पूर्ण हो उसके पहले ही देश में रबीन्द्रनाथ नाथ की कविताओं की धूम मच गई और लोग अपनी अपनी परंपराओं को छोड़कर रबीन्द्रनाथ की ओर दौड़ पड़े, और इस प्रकार हिंदी में एक नई धारा चल पड़ी, जो अपनी बनाई हुई कम अन्यत्र निर्मित अधिक थी।

आरंभ में छायावाद का बड़ा विरोध हुआ। जनता के कुछ समुदाय ने एवं कुछ साहित्यकारों ने इसका प्रतीकात्मक नाम रख दिया, जैसे "अनंत की ओर जी"' लंबे बाल जी' तथा 'छायावाद जी' आदि विरोधियों के सबसे मुखर प्रतिनिधि काशी के लाला भगवानदीन जी तथा मुंगेर के पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी जी थे।चतुर्वेदी जी तो स्वभावत: हास्य प्रिय जीव थे।वे सभा- सम्मेलनों में निराला जी के छंदों की पैरोडी बनाकर लोगों को हंसाया करते थे और बात-बात में छायावाद पर कोई न कोई ताना करते ही रहते थे। छायावाद पर दो व्यंग सुधा में भी छपे थे:- किसने छायावाद चलाया, किसकी है यह माया? हिंदी भाषा में यह न्यारा शब्द कहां से आया?

रबीन्द्रनाथ नाथ का प्रभाव छायावाद परअवश्य पड़ा है, किंतु छायावाद के साथ हिंदी कविता में जो एक नई भंगिमा उत्पन्न हुई, उसकी परंपरा हिंदी में बहुत दिनों से आ रही थी। वह विद्यापति की 'जन्म अवधि हम रूप ' वाली पंक्ति में थी। वह कबीर और मीरा की भी पंक्तियों में मिलेगी औंर सूर की बिरहावाली पंक्तियों में भी हम उसकी झांई देखते हैं। यही नहीं आगामी शैली का पूर्वाभास तुलसीदास में भी मिलता है।

छायावाद की संभावनाएं अनेक और महान थी। जब तक कवियों की दृष्टि समाज की ओर नहीं गई, तब तक यह अकारण भ्रमण पथ में आनंद खोजते रहे। तब तक छायावाद उनको लेकर ताराओं और बादलों की राह चलता रहा, परंतु ज्योंही वे धरती की ओर उन्मुख हुए, छाया बाद उनके साथ पृथ्वी पर उतर आया। शैली की सामर्थ्य भाव- दशा के अनुरूप ही घटती -बढ़ती रहती है। पहले अगर छायावाद अशक्त था तो वहां अभिव्यंजना की नई शैली का दोष नहीं, उन कवियों का दोष था, जो अशक्त भाव के आलंबन से शक्तिशाली काव्य की रचना करना चाहते थे। किंतु ज्यों ही उनके भाव शक्तिशाली होने लगे छायावाद ने पूरे बल से उनका साथ दिया इसलिए मेरा विचार है कि जिसे हम प्रगतिवाद कहते हैं वह छायावाद के परिवार के सिवा और कुछ नहीं है।

छायावादोत्तर काल: विशेषताएं एवं आत्मानुभूति

दिनकर जी ने छायावादोत्तर युग की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अपना अनुभव लिखा है:-

आरंभ में छायावादी ढंग की कुछ कविताएं मैंने भी लिखी थी, जिनमें से अधिकांश तो नष्ट हो गई कुछ रेणुका से लेकर रसवंती तक मौजूद भी है जो नष्ट हो गई, विशेषत: उन कविताओं के संबंध में ऐसा याद आता है, उन्हें लिख लेने के बाद मुझे लगा, मानो मेरी सारी बातें कसम साकर मेरे भीतर ही छूट गई हो और जो कुछ मैं कह पाया हूं, वह अकथित कथ्य का आभास मात्र हो।.....कविता समाप्त करते करते मेरी मुद्रा शिथिल हो जाती और अपने श्रम को भी नष्ट हुआ मानकर मैं शिथिल हो जाता था। मेरी वेदना अभिव्यक्ति की वेदना थी और मेरे जसन्मुख में जो चुनाव था, वह क्लासिक और रोमांटिक अथवा द्विवेदी युग और छायावादी काल था, मैथिलीशरण और सुमित्रानंदन पंत के बीच था।

दिनकर: काव्यगत विशेषताएं

दिनकर के काव्य के उतार-चढ़ाव के प्रत्येक चरण को उनके जीवन के विकास क्रम के साथ जोड़ा जा सकता है। जन्मभूमि सिमरिया। (मुंगेर बिहार) के बांस-वन प्राकृतिक सुषमा और साथ-साथ गांव वालों के जीवन का विकराल दैन्य,अशिक्षा और मरण की देहरी पर नव जन्म के गीत। इतिहास में ऑनर्स करने के बाद का अकिंचन अध्यापक, फिर एक राष्ट्रधर्मी, स्वाभिमानी सब- रजिस्टार जिसकी सेवा के प्रथम 4 वर्षों में ब्रिटिश शासन ने 22 बार ट्रांसफर किया कि हिमालय और हुंकार का यह कवि नौकरी छोड़ दे। देश की स्वतंत्रता के उपरांत पटना में 6 वर्ष तक सरकारी प्रचार-विभाग का अधिकारी, फिर कॉलेज में हिंदी विभाग का अध्यक्ष अध्यापक विश्वविद्यालय का कुलपति बीच-बीच परिवार और सगे संबंधियों का दायित्व का निर्वाह। इन परिस्थितियों ने भी दिनकर की काव्य भावना को उत्तेजित किया। दिनकर ने अपने जीवन का आधा भाग गांव में बिताया और अंतिम भाग में ही उन्हें प्रतिष्ठा मिली। संसद सदस्य के रूप में 12 वर्ष और हिंदी सलाहकार अधिकारी के रूप में 7 वर्ष उन्हें दिल्ली में रहना पड़ा। वहां उन्होंने भारत -भाग्य विधाताओं का खोखले जीवन, दांव-पेंच पर झूठे वादों का गहन अध्ययन किया। इस दयनीय दशा को कवि- हृदय ने दिल्ली कविता में दर्शाया है:-

आहे उठी दिन कृषकों की, मजदूरों की तड़फ-पुकारे,
अरी? गरीबों के लहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें।

दिनकर की कविता का विकास आदि से अंत तक द्वन्दों से जूझने की कथा है। द्वंद जो प्रबुद्ध कवि को चिंतन और भावना के क्षेत्रों में प्रत्येक स्वर् पर घेरते है, विकास करते हैं एवं उसे प्रगति के पथ पर ले जाते है। छायावाद की अभिजात्य शैली और रहस्यात्मक कथ्य से दद्वंद'रेणुका' (1935ई.) के सहज रचना शिल्प और जैन सुबोध, सामयिक कथ्य का हुंकार (1938 ई.) में क्रांतिकारी आह्वान से द्वन्द। में द्वंद गीत (1940) तो अभिधा में ही स्पष्ट है। 'रश्मिरथी' (1952ई.) के प्रतिपक्ष में आ खड़ी होती है। 'उर्वशी' जो अप्सरा और लक्ष्मी, दिव्धाग्रस्त और मानव और दिव्धा-मुक्त देवता एवं काम और अध्यात्म के दोनों की गाथा है।रहट के घाटों की माला के उतार-चढ़ाव भांति 'चक्रनेमिक्रमेण' उर्वशी (1961ई.) प्रतिगामी दिशा की प्रभावकारी मुद्रा 'परशुराम की प्रतीक्षा'(1963ई.)से परिलक्षित है।

कड़ी- कड़ी मिलकर जब दोनों की श्रृंखला एक तरह से पूरी हो गई, तो आगे की यात्रा के लिए शक्ति -संचय का दशक जैसे जरूरी हो गया। रश्मिरथी से उर्वशी तक आने में एक दशक लगा। बीच के व्यवधान को विश्रांति की कविताओं ने

पाटा- 'दिल्ली' और 'नीम के पत्ते' 'सूरज का बयान' और 'नील कुसुम' 'परशुराम की प्रतीक्षा' के बाद दिनकर के गीत 1972 एक दशक और एक दशक इसी प्रकार विश्रांति का काल है।

इन दो दशकों का तथाकथित, यथा परिलक्षित विश्रांति काल दिनकर के लिए घोर आंतरिक संघर्षों का काल रहा है। इस प्रकार की स्थिति ने दिनकर के बाहर के प्रसार को अंतर्मुखी किया,अअ जिससे उन्हें नई उपलब्धियों से मंडित किया विश्व कविता का अध्ययन और प्रभाव, 'नीलकुसुम' (1955 ई.) सीपी और शंख(1966ई.) दार्शनिक ग्रंथों का मनन, इतिहास का अध्ययन, राष्ट्र की आत्मा को परिभाषित करने का प्रयत्न संस्कृति के चार अध्याय (1956) धर्म नैतिकता और विज्ञान (1959) इन अंतराल में दिनकर की चिंतन की गरिमा गद्य के निशार में व्यक्त हुई है। इन दो दशकों को विराम कथा में जो बात छूट गई वह अपने में महत्वपूर्ण है। इनमें जीने की साधना का प्रवेश- द्वार ज्ञात होता है। हारे को हरिनाम 1970 से उनकी आंतरिक भावना और जीवन की यथार्थता दोनों ही परिलक्षित होते हैं। यह भी स्पष्ट होता है जो दिनकर की जीवन के श्वास-प्रश्वास है। अब तक प्रकाशित लगभग 30 काव्य कृतियों संकलनों आदि में से श्रेष्ठ चुनना बहुत कठिन है, किसी के लिए भी स्वयं कवि के लिए तो असंभव ही है क्योंकि प्रत्येक रचना उसकी आत्मा है वह किसे कहें कि यह वरनीय नहीं।

दिनकर लिखित उर्वशी पर उन्हें 1972 ई.के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनके समस्त काव्य-कवियों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है और यह प्रतीत होता है- दिनकर का काव्य विस्तार की दृष्टि से कालवधि – को परिभाषित करने की दृष्टि से, भाषागत विषयगत, प्रयोगों की दृष्टि से गुणवत्ता और प्रकृति गत विधाता की दृष्टि से,तथा सर्वोपरि साहित्यिक विषय का प्रयोग की दृष्टि से गुणवत्ता प्राकृतिक विविधता की दृष्टि से तथा सर्वोपरि साहित्य प्रभाव की दृष्टि से अद्वितीय है, अद्भुत है, महान है। दिनकर ने छायावाद की अस्पष्ट और वायवीय तथा रूप विधान वाली काव्य परंपरा से अलग होकर आधुनिक हिंदी कविता को एक ऐसी ओजमयी ऋजु भाषा शैली दी, जो राष्ट्रीयता की अदम्य प्रेरणाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई।वे हिंदी साहित्य में एक अपूर्व घटना तथ्य जैसे- बनकर आए, क्योंकि जिस सशक्ता से उनकी ललकार और विद्रोह का झंडा ऊंचा कर सकी, उसी से सुशांत चिंतन और गीत आत्मक भाषा शैली में मानव मन के कोमल भावों को प्रकट करती आई। उनके काव्य में इन दोनों प्रवृत्तियों का बार-बार बड़ा मुग्धकर पुनरावर्तन होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि अचूक आह्वान- शक्ति और भावात्मक प्रकृति दोनों के सहभाव के कारण उनके काव्य को 'दहकते अंगारों का इंद्रधनुष की क्रीड़ा' से उपमति किया गया है।

दिनकर जी ने उत्तम प्रतीकों का चयन करके अपूर्वचयी बुद्धि का परिचय दिया है। छायावाद के वायबीय गगन से उन्होंने धरती पर ना केवल स्वयं आने का बल्कि कविता कामिनी को भी खींच लाने का जो प्राण किया था, उसकी पूर्ति उर्वशी की रचना से हुई है। परंपरागत प्रतीकों का उपभोग उन्होंने एक नई दिशा में किया है। परंपरा एवं प्रकृति का यह गठबंधन हिंदी काव्य के लिए निश्चय ही शुभ है।

संदर्भ सूची

1. संस्कृति के चार अध्याय (ii)
2. काव्य की भूमिका पृ. 1
3. काव्य की भूमिका पृष्ठ- 7,22,23
4. काव्य की भूमिका पृष्ठ-46-50
5. लक्ष्मी चंद्र जैन, संपादक लोकोत्तर ग्रंथ माला, संचयिता की प्रस्तुति, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।